Artistic Narration: *A Peer Reviewed Journal of Visual & Performing Art* **ISSN (P): 0976-7444**
Vol. IV. , 2013

ISSN : (P) 0976-7444
(e) 2395-7247
Artistic Narration
A Journal for Visual & Performing Art

संगीत का ललित कलाओं से सह सबन्ध

डॉ. ओमप्रकाश चौहान
ऐसोसियेट प्रो.
राजकीय स्नात्कोतर
महाविद्यालय सोलन ;हि.प्र.
chauhanom0089@gmail.com

संगीत वह ललित कला है, जिसमें संगीतज्ञ अपने मनोगत भावों एवं कल्पनाओं को स्वर, लय तथा ताल ;गायन में पद भी की सहायता से व्यक्त करता है। सभी कलाओं को हम ललित कला नहीं कह सकते। ललित कला एवं संगीत के पारस्परिक सम्बंध को जानने से पूर्व कला क्या हैं? यह जानना भी आवश्यक है–

कला की परिभाषा

कला मानव की सांस्कृतिक चेतना का प्रतिफलन है। जब किसी कार्य को कुशलतापूर्वक तथा सुन्दर ढंग से किया जाए तो उसे कला कहा जाता है। अतः कला मनुष्य की रचनात्मक शक्ति की सौन्दर्यमय अभिव्यक्ति है। सभी मनुष्यों में रचनात्मकता होती है जिन्हें कला के द्वारा विकसित किया जा सकता है। कला के द्वारा ही मनुष्य में नैतिक गुणों का विकास होता है। कला मनुष्य के विचारों और भावों को प्रकट करने का एक माध्यम है। मनुष्य आदिकाल से ही अपनी आकांक्षाएं, अपने हर्ष अथवा विषाद को कला के द्वारा ही प्रकट करता आया है। कला का प्रभाव मनुष्य के हृदय अथवा मस्तिष्क दोनों पर पड़ता है। इसलिए कला का उपयोग विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति के लिए किया जाता हैं।

कला शब्द भारतीय भाषाओं में अत्यंत प्राचीन काल से प्रयुक्त होता आ रहा है। कला शब्द की उत्पत्ति 'कल' धतु से हुई हैं। कल का अर्थ है– सुन्दर व मधुर। कला शब्द की सिद्दि 'ला' धतु से होती है, जिसका अर्थ है– प्राप्त करना। अतः कला का शाब्दिक अर्थ सुन्दरता को प्राप्त करना है।

भारतीय दृष्टिकोण के अनुसार 'कला' शब्द का प्रयोग प्रथम बार ट्टग्वेद में हुआ– फ्यथा कला, यथा शफम् च ट्टणं सैनयामसि ;ट्टग्वेद 8/47/16द्ध।ग् यजुर्वेद के 30 वें अध्याय में भी कलाओं का उल्लेख मिलता है। इसके उपरान्त कला शब्द अनेक अर्थों में प्रयुक्त होता रहा है। उपनिषद में कला की परिभाषा इस प्रकार से की गई है–

कलयति, निर्माययति स्वरूपं इतिकलां।

अर्थात जो स्वरूप का निर्माण करती है, वह कला है।

कला को कल्याणी का पर्याय मानते हुए–'कल्याणी कमनीयं भवति' कहा गया है। भरतकृत नाट्यशास्त्रा में कला शब्द का उल्लेख 'शिल्प' के रूप में हुआ है। पाणिनि की अष्टाध्यायी तथा बौ(ग्रथों में भी कला के लिए शिल्प शब्द का प्रयोग हुआ है। यहाँ शिल्प कलाकौशल का बोध्क था। यद्यपि इस काल में कलाओं के वर्गीकरण के स्पष्ट संकेत नहीं मिलते, परन्तु जनसाधरण तथा विशिष्ट वर्ग कला के महत्व से अवश्य ही परिचित था। पांचाल ने कलाओं का विभाजन दो विभागों में किया था–मानवोपयोगी कलाएं

तथा देवीदेवताओं से सम्बन्धित कलाएं। इसके अंतर्गत ऐसे मंत्रों तथा शब्द–ध्वनियों की रचना की जाती थीं, जिनसे देवताओं का आह्वान किया जाता था। तात्पर्य यह है कि ईश्वर की कलात्मक कृति प्रकृति के विविध रूपों से प्रेरित होकर मनुष्य ने विभिन्न कलाओं का निर्माण किया।

---

1. 'संगीत' ;पत्रिकाद्ध, मार्च 96, पृ. 3
2. भारतीय संगीत का अतिहास, डा. सुनीता शर्मा, पृ. 142–143

प्रत्येक कला के बाह्य तथा आंतरिक दो रूप होते हैं। कला अपने आंतरिक रूप में तीन बातों को लेकर चलती है– सौंदर्य, संदेश, तथा रस। सर्वप्रथम सौंदर्य का स्थान आता है। सौंदर्य तथा कला पर्यायवाची शब्द कहे जा सकते हैं प्रत्येक कला का उद्देश्य सौंदर्य वृ(करना होता है तथा किसी कला की सर्वश्रेष्ठता का स्तर काफी हद तक उसकी सौंदर्य वृ(की शक्ति पर निर्भर करता है। दूसरे, प्रत्येक कला के मूल में कोई न कोई संदेश अवश्य छिपा रहता है। तीसरी बात यह है कि कला का सम्बन्ध रस उत्पन्न करने से भी जोड़ा जाता है। कला को सि(तभी माना जा सकता है जब उससे केवल कलाकार के मन में ही निहीं बल्कि श्रोताओं अथवा दर्शकों के हृदय में भी रस की सृष्टि हो।

कला की परिभाषा एंव उसके उद्देश्य के संदर्भ में सदियों से ही विद्वान अपने विचार व्यक्त करते आये हैं। कुछ विचारक कलावादी है जो 'कला को कला के लिए' मानते हैं। ये विचारक कला में सौंदर्य को विशेष महत्व देते हैं, उसकी उपयोगिता व नैतिकता को नहीं। दूसरी और कुछ विचारक कला की उपयोगिता को महत्वपूर्ण मानते है क्योंकि उनके विचारानुसार 'कला जीवन के लिए' है। कुछ मनोवैज्ञानिक विचारकों की कुछ परिभाषाएँ निम्नलिखित है–

प्लैटो के अनुसार फकला सत्य की अनुकृति है।य

पाश्चात्य विद्वान अरस्तु ने कला को प्रकृति का अनुकरण माना है। उनके अनुसार– फकला प्रकृति है और इसमें कल्पना भी है।य

इनका मत है कि व्यक्ति कला में प्रकृति का अनुसरण करता है, अभिव्यक्ति द्वारा उसे पुनः सृजित करता है। इस सृजन में वह कल्पना द्वारा नवीनता भी पैदा करता है।

हिन्दी के सुप्रसिद्व कवि मैथिलीशरण गुप्त के शब्दों में – फअभिव्यक्ति की कुशल शक्ति ही कला है।य

आचार्य शुक्ल के अनुसार–फअनुभूति को दूसरे तक पहुंचाना ही कला है।य फ्रांसीसी समालोचक फागुए के मतानुसार– फभाव की उस अभिव्यक्ति को कला कहते है जो तीव्रता से मानव हृदय को स्पर्श कर सके।

रविन्द्रनाथ ठाकुर जी का कहना है कि, फसत्य है, जो सुंदर है, वही कला है।य

महात्मा गांधे ने कला की परिभाषा उसकी उपयोगिता के महत्व को ध्यान में रखकर की। उनके अनुसार– फकला से जीवन का महत्व है। यदि कला जीवन की सुमार्ग पर न जाए तो वह कला क्या हुई।य

टॉलस्टॉय के अनुसार, फकला केवल मर्मज्ञों के लिये न होकर जनसाधरण के लिये है।य

अपने किसी नाटक के मचंन के पूर्व सभा को सम्बोधित करते हुए किसी अज्ञात अंग्रेज लेखक की बात का भावानुवाद रंगमंज और चलचित्राों के प्रसिद्व कलाकार नाट्यार्चा पृथ्वीराज कपूर जी ने इन शब्दों में रखा था। फ हाथ पैर से होने वाला काम मजदूरी है, जब उसमें दिमाग की शक्ति का योग हो जाए तो वह

---

1. भारतीय कला परिचय, श्रीमति कुसुम दास, पृ. 1
2. संगीत दर्शन, श्रीमति विजय लक्ष्मी जैन, पृ. 2

कारीगरी बन जाता है तथा जब उसमें दिल का भी सहयोग मिल जाए तो वह काम कला बनकर खिल उठता है।

उपर्युक्त सभी परिभाषाओं का अध्ययन करने के पश्चात् ज्ञात होता है कि 'कला' की जड़े मनोभावों में है। तथा फल अभिव्यक्ति में। कलाकार आनन्द की अनुभूति को प्राप्त ज्ञान के अनुसार अपनी सीमाओं में अंतर्गत अभिव्यक्त करता है तथा देखने वालों व सुनने वालों को उसकी अनुभूति कराता है। यह सम्पूर्ण प्रक्रिया ही कला है। कला केवल मस्तिष्क अथवा बुि(का ही व्यायाम नहीं है अपितु हृदयगत भावों से भी सम्ब(है। यही कारण है कि कलाकार कला में डूब जाता है और कुछ समय के लिए आत्म विस्मृति की स्थिति में पहुँच जाता है। कला, कलाकार की सौन्दर्यात्मक अनुभूतियों की अभिव्यक्ति है। भिन्न–भिन्न कलाओं का जन्म कलाकार की इन्हीं कल्पनाओं की अनुभूति की अभिव्यक्ति के कारण होता है। कला वही है जो हर एक व्यक्ति के हृदय को छुए। यद्यपि कला सौंदर्य से परिपूर्ण होती है, किन्तु सौंदर्य प्राप्ति उसका लक्ष्य नहीं है। कला यथार्थ की अनुकृति भी है। कला को समाज में चेतना उत्पन्न करने वाली शक्ति के रूप में ग्रहण किया गया है। जैसे भारत की स्वतन्त्राता की लड़ाई में शहीद हुए वीरों की गाथा को कलाकारों ने चित्राों द्वारा वर्णित किया है। ये चित्रा यथार्थ की अनुकृति हैं और उनमें कलाकार ने अपनी कल्पनाओं से घटनाओं का ऐसा चित्राण किया है जो हृदय विदारक है। इस प्रकार का चित्रा मृत्यु का यथार्थ स्वरूप इस प्रकार प्रस्तुत करता है कि वह 'चित्रा' कला की श्रेणी में माना जाता सकता है । कला में मानव की भौतिक और आवश्यकताओं का सम्बन्ध मनुष्य के रहन–सहन, खान–पान तथा आध्यात्मिक इच्छाओं का सम्बन्ध आत्मा की तृप्ति तथा अपने ईष्ट देव की आराध्ना द्वारा मोक्ष की प्राप्ति करने से माना जाता है। साधरण शब्दों में हम कह सकते है कि जब व्यक्ति किसी भी माध्यम द्वारा अपने हृदयगत भावों का प्रकाशन करता है तो वह कला कहलाती है।

ग्रथों में कई प्रकार की कलाओं का उल्लेख मिलता है। कलाओं की संख्या के विषय में कोईग एक निश्चित मत नहीं है। विभिन्न विद्वानों ने कला संख्या अपने–अपने मतानुसार बताई है। 'ललित विस्तार' में 86 कलाओं का विवरण मिलता है। बौ(ग्रथों में कलाओं की संख्या 84 मानी गई है। 'प्रबन्ध कोष' में 72 कलाओं का उल्लेख मिलता है। जैन–सूत्राों में भी इनकी संख्या 72 ही वर्णित है। पण्डित प्रवर क्षेमेन्द्र के 'कलाविलास' में 64 कलाओं का विवरण हैं।[1] 'भागवत पुराण' के दसवें अध्याय में कुछ श्लोक ऐसे है, जिनमें बलराम और कृष्ण को 64 कलाओं का ज्ञाता बताया गया है।[2] वात्स्यायन ने अपने ग्रंथ 'कामसूत्रा' में 64 प्रकार की कलाएं बताई हैं। यद्यपि उपलब्ध नहीं होती। कला से तात्पर्य एक ऐसे कौशल से लिया गया हैं, जिसके द्वारा आनंद की प्राप्ति हो, व्यक्तित्व का संचार हो और जो प्रसन्नतादायक हो।

प्राचीन काल में आचार्यों और विद्वानों ने कला का क्षेत्रा अत्यन्त व्यापक रखा। अपने–अपने ढत्रग से उन्होनें उन कलाओं की सूचियाँ भी बनाईं। फिर भी इस बात पर प्रायः सभी विद्वान एकमत है कि प्रमुख कलाएं 64 ही हैं। कुछ ग्रंथकारो ने इन

---

1. 'संगीत' ;पत्रिकाद्ध, जुलाई 2006, पृ. 37
2. भारतीय शास्त्रीय संगीत एवं सौंदर्यशास्त्रा, डॉ. अनुपम महाजन, पृ. 54,55

64 कलाओं की सूची में भी अपने–अपने दृष्टिकोण से फेरबदल किया है। उदाहरण के लिए, 'कामसूत्रा' के रचयिता ने का 'कामकला' को 64 कलाओं में एक नहीं माना है, जबकि शुक्राचार्य ने माना है। वात्स्यायन ने सभी प्रकार के शिल्पकर्म को कला के अंतर्गत रखा है और निम्नलिखित 64 कलाएं बताई हैं–

1. गीत
2. वाद्य
3. नृत्य
4. नाट्य
5. आलेख्य– मूर्तिकला और चित्राकला
6. विशेषकच्छेद्य–पत्तियों आदि को विभिन्न रूपों में काटकर मस्तक को अलंकृत करना।
7. तंडु कुसुमकलि विकार– चावल या पुष्पों से रेखाचित्राों की रचना करना, पूजा के लिये रंग–बिरंगे फूलों का चौक बनाना।

8. पुष्पास्तरण–फूलों की सेज सजाना।
9. दशनवसनांगराग– शरीर, वस्त्रा और अंगो को रंगना
10. मणिभूमिका कर्म– मणियों और जवाहरात से फर्श और घर को सजाना।
11. शयन रचना– शÕया बनाना।
12. उदक वाद्य– पानी से उत्पन्न ध्वनि के वाद्य बनाना जैसे जलतरंग।
13. उदक घात– जल से सम्बन्धित विभिन्न क्रीड़ाएं करना जैसे पिचकारी से रंग फेकना, छींटे मारना, गुलाबजल फेंकना आदि।
14. चित्राायोग–विविध प्रयोजनों की सिद्वि के लिए उपचार निर्देश देना, वैचित्रय प्रदर्शन, जैसे जवान को बूढ़े को जवान बनाना।
15. माल्य ग्रंथ विकल्प– माला गूंथना और माला की बहुविध रचनाएं करना।
16. केशारिवराशियोजन–केशों को फूलमालाओं से अलंकृत करना।
17. नेपथययोग– वस्त्राभूषण आदि से स्वयं को या दूसरों को अलंकृत करना।
18. कर्णपत्रा भंग– कर्ण पत्रा बनाना।
19. भूषणयोजन– आभूषण बनाना।
20. इन्द्रजालयोग– इन्द्रजाल करना, जादूगर के तमाशे दिखाना।
21. गन्ध्युक्तिः–कई द्रव्यों के मिश्रण से सुगन्धि तैयार करना।
22. कोचुमार योग–कुरूप को सुंदर बनाने के लिए उपचार करना, उबटन आदि लगाना
23. हस्तलाघव– हाथ की निपुणता से अद्भुत खेलों को दिखाना।
24. विचित्राशाकपूपभक्ष्य विकारक्रिया– विभिन्न प्रकार के पकवान, पूप, शाक आदि बनाना।
25. पानकरस–रागासवयार्जन–शर्बत, चटनी, मदिरा आदि बनाने और मिलाने की क्रिया
26. सूचीकर्म–सिलाई, बुनाई और कढ़ाई करना।
27. सूत्राक्रीड़ा–धगों के माध्यम से विभिन्न प्रकार के बेलबूटे बनाना।
28. प्रहेलिका– पहेलियाँ बनाना।
29. प्रतिमाला– अन्त्याक्षरी अथवा तुकान्त कविता करना।
30. दुर्वाचक योग–कठिन छन्दों की रचना करना, अर्थ करना तथा पढ़ना।
31. पुस्तक वाचन–पुस्तक पढ़ना।
32. नाटिकाख्यायिकादर्शन–नाटक दिखाना।
33. काव्य समस्यापूरण– उस छंद की पूर्ण रचना करना जिसका एक अंश प्रस्तावित किया गया है अर्थात् समस्यापूर्ति या कविता चातुर्य।
34. पट्टिकावेत्रावाण विकल्प– बेंत, निवार आदि के आसन, चारपाई बनाना।
35. तुर्ककर्म– तकले का काम।
36. तक्षण– बढ़ई का काम।
37. वास्तुविद्या– भवन, ग्रह आदि का निर्माण करना।
38. रूप्यरत्नपरीक्षा– मणियों और रत्नों की परीक्षा करना।
39. धतुविद्या– धतुओं को पिघलाना, शु(करना और मिलाना।
40. मणिरागज्ञान– रत्नों, मणियों के रंग जानना।
41. आकरज्ञान– खानों को खोदना और खनिजों को जानना।
42. वृक्षायुर्वेदयोग– वृक्षों की चिकित्सा करना।

43. मेष, कुक्कुट लावक यु(विध्– पशु पक्षियों को यु(कला में निपुण करना।
44. शुकसारिका प्रलापन–पक्षियों को मनुष्यों की भाषा में बोलने की शिक्षा देना।
45. उत्सादन–उबटन लगाना।
46. केश–मार्जन कौशल–बाल संवारना।
47. अक्षरमुष्टिका कथन– उंगलियों के संकेत से बोलना।
48. मलेच्छितिक विकल्प– विदेशी भाषाओं का ज्ञान।
49. देश–भाषाज्ञान–देश की भाषाओं का ज्ञान।
50. पुष्पशकटिकानिमित्तज्ञान– दैवी लक्षण देखकर भविष्य कथन।
51. यंत्रामातृका– यंत्रा बनाना।
52. धरणमातृका– पढ़े हुए को स्मरण करना।
53. संपाठ्य– अनेक व्यक्तियों के साथ पाठ करना।
54. क्रियाविकल्पा– क्रिया का प्रभाव बदल देना।
55. मानसीकाव्यक्रिया– मन में काव्य रच कर सुनाते जाना।
56. छलितकयोग– छल करना।
57. अभिधनकोषच्छन्दोज्ञान– कोष और छंदशास्त्रा का ज्ञान।
58. वस्त्रागोपन– वस्त्रा रक्षा।
59. द्यूत विशेष– जुआ खेलना।
60. आकर्षण क्रीड़ा– पासा फेंकना।
61. बालक्रीड़ा कर्म–बच्चों को खिलाना।
62. वैनायिकी विद्याज्ञान– विनम्र व्यवहार करना।
63. वैजयिकी विद्याज्ञन–यु(करना।
64. वैतालिकी विधज्ञन– चारण की कला।

कलाओं की संख्या पर विवरण देने के पश्चात संगीत को विद्वानों ने कला अथवा ललित कला किस क्षेत्रा में रखा है, यानि भिन्न–भिन्न विद्वानों ने कला के जो

---

1. संगीत दर्शन, विजय लक्ष्मी जैन, पृ. 1

वर्गीकरण दिए है उसमें संगीत का किस रूप में स्थान है इसे जानने के लिए विभिन्न विद्वानों के कला के वर्गीकरण पर दृष्टिपात करना आवश्यक है। कला का क्षेत्रा व्यापक होने के कारण अनेक विचारको ने अपने ढंग तथा प्रकृति के अनुसार कला 'कारू' नामक प्रकारों में रखा गया था। 'कारू' का सम्बन्ध उपयोगिता से था और 'चारू' का केवल सुंदरता से। चौक पूरना, मेंहदी लगाना आदि चारू कलाएं थीं तो सिलाई, काष्ठकारी आदि कारू अथवा उपयोगी कलाएं थीं। ये बात अलग है कि वर्गीकरण का आधर अलग–अलग रहा है।

ललित कला से अभिप्राय

ललित कलाएं कलाओं का एक विशेष विभाजन है, जिसके अंतर्गत कुछ चुनी हुई कलाएं रखी गई है। ललित संस्कृत का शब्द है। जिसका अर्थ है– प्रिय, सुन्दर, मनोहर आदि। अतः जो कला यह गुण रखती है वह ललित कला कहलाएगी। ललित कला और कला में बहुत ही साधरण सा अन्तर है जिसे डॉ. प्रदीप कुमार दीक्षित जी ने अपनी पुस्तक 'सरस संगीत' में बहुत ही अच्छे व आसान शब्दों में इस प्रकार व्यक्त किया है–पभारतीय चिंतन के अनुसार चौंसठ कलाएं मानी गई है। जिसमें पाकशास्त्रा की कला और तस्कर कला की भी गिनती हो गई है, किन्तु 'ललित कला' अन्य कलाओं से कुछ विशिष्टता रखती है। सभी कलाएं ललित–कला नहीं हो सकती। कला में कौशल के उपरांत उपयोगिता का ध्यान रखा जाता है। ललित कलाओं के लिए उपयोगिता वाली शर्त नहीं होती

भावात्मक प्रदर्शन, जिसका मुख्य ध्येय विशु(आन्नदप्राप्ति हो, उसे ललित कला कहेंगे। ललित–कला के उपभोग में पांच में से केवल दो ही इंद्रियों का उपयोग होता है–दर्शन ;आँखद्ध और श्रवण ;कानद्ध, बाकी इन्द्रियों से हम जगत को जानते है किन्तु, ललित कला में बाकि तीनों इन्द्रियों का कोई काम नहीं रह जाता।

वसुध कुलकर्णी के अनुसार, 'ललित कला को समझने के लिए लालित्य को समझना आवश्यक हो जाता है। लालित्य को शब्दों में व्यक्त करना मुश्किल है। लालित्य को हम अनुीाव कर सकते है। लालित्यपूर्ण किसी भी बात को देखते समय हम उसके कुछ गुणों का विचार एक और विशेष प्रमुख गुण लयात्मकता है। ये सारी बातें जिस कला में होगी, वह ललित कला कहलाई जायेगी।

ललित कला को मनस्तत्व ही कहा गया है, जिसका अर्थ है ' मानसिक सुस' अथवा 'मानसिक आनन्द', इन कलाओं में मुख्यतः वे ही कलाएं सम्मिलित की जाती है, जिसका उद्देश्य मनुष्य के मन को आनन्द प्रदान करना ही होता है। वैसे जो चीज मनुष्य के मन को आनंद प्रदान करती है वह मनुष्य के लिए अवश्य ही उपयोगी है और उसे भी उपयोगी कला कहा जाए तो अनुचित न होगा। पर समझना इतना ही है कि ललित कलाएं उपयोगी होते हुए भी मनुष्य को एक अन्य प्रकार से प्रभावित करती है, जिससे ऐन्द्रिय सुख तो मिलता ही है, साथ ही ये कलाएं मानसिक, भावनात्मक या यूं कह सकते है कि आध्यात्मिक सुख अथवा आनन्द भी प्रदान करती हैं। यद्यपि ललित कलाओं से कोई भौतिक सुख प्राप्त नहीं होता, तथापि इनसे हृदय और मस्तिक को तीव्र आनन्द की प्राप्ति होती है। सुख तो साधरण जीवन की आवश्यकताओं की प्राप्ति से भी हो सकता है परन्तु आनन्द उन्हीं वस्तुओं से मिलता

1. स'रस' सगीत, डॉ. प्रदीपकुमार भूपेंद्रनाथ दीक्षित 'नेहरग', पृ. 110

है जिनसे थोड़ी देर के लिए ही सही, हमारा मन दुनियाबी स्तर से उठकर कुछ अलौकिक सा आनन्द प्राप्त करने लगता है। उदाहरण के लिये किसी ऐसे चित्रा को देखकर जिसमें हम आत्मविभोर हो उठते है, ऐसे चित्रा देखकर एक मानसिक आनन्दानुभूति होती है। यद्यपि इस चित्रा में वर्णित दृश्य से हमारी कोई भौतिक आवश्यकता पूरी नहीं होती, तथापि इससे प्राप्त आंनद अलौकिक होता हैं, जिसकी तुलना में कोई भी भौतिक उपलब्धि तुच्छ प्रतीत होती है।

यद्यपि अलौकि आनन्द आत्मा का विशेष आहार होता है। अतः यह कलाएं जिनसे हमें ऐसे आनन्द की प्राप्ति होती है वह ललित कलाएं कहलाती है। भारतीय चिन्तन के अनुसार ललित कलाएं निम्नोक्त है–

1. काव्य ;नाट्य को इसी के अंतर्गत गिन लिया गया हैद्ध
2. संगीत ;जिसके अंतर्गत गीत–वाद्य–नृत्य तीनों समाविष्ट हैद्ध
3. वास्तुकला ;जिसके अंतर्गत चित्रा और मर्तिकला आ जाती हैद्ध

पाश्चात्य चिन्तन में ललित कला के लिए 'फाइन आर्ट' शब्द का प्रयोग होता है। पाश्चात्य चिंतन के अनुसार ललित कलाएं या फाइन आर्टस निम्नानुसार है–

1. काव्य
2. नाट्य
3. संगीत
4. चित्राकला
5. मूर्तिकला

1. स'रस' संगीत, डॉ. प्रदीपकुमार भूपेंद्रनाथ दीक्षित 'नेहरंग', पृ. 112

6. वास्तुकला

आज ऐसा लगता है कि संगीत कला से जुड़ा प्रत्येक व्यक्ति सिर्फ येन–केन–प्रकारेण से प्राप्त करना चाहता है और अधिक से अधिक ध्न कमाना चाहता है। इस फेर में पड़ कर वो यह भूल जाता है कि जिस कला का वो इस सबके लिये प्रयोग कर रहा है, उस कला और उसकी गुणवत्ता के साथ न्याय कर पाने में क्या वह सक्षम है? लेकिन इस मानसिकता एवं बदलाव की स्थिति का संपूर्ण दोषारोपण केवल उस व्यक्ति पर ही नहीं किया जा सकता। कहीं ना कहीं परिस्थितियाँ भी दोषी हो सकती हैं। फिर ीाी यह तो स्पष्ट ही है कि इस प्रगतिशील युग में जहाँ शास्त्रीय संगीत उन्नति की चरम सीमा पर विद्यमान है, ज्यादा से ज्यादा इसका प्रचार–प्रसार हो

रहा है, वहां ऐसा अनुीाव किया जा रहा है कि आज शास्त्रीाय संगीत गुणवत्ता की दृष्टि से बहुत सिमट कर रह गया है। यानि कला की दृष्टि से शास्त्रीाय संगीत आज उस स्थान पर नहीं रह गया जहाँ आज से 75 या 100 वर्ष पूर्व था। कहीं इस स्थिति के कारण रूप में संगीत कला के क्षेत्रा में बढ़ती हुई व्यावसायिक प्रवृत्तियाँ तो नहीं हैं? जिनके चलते आज संगीत कला के साथ–साथ अन्य कलाओं ने भी व्यवसाय का रूप धरण कर लिया है।